International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(II), October - December, 2022, pp. 365-371

प्रेमचन्द के उपन्यासों में यथार्थवादी चेतना

डॉ. पीयूष कुमार पारीक*

सार

प्रेमचंद का हिंदी कथा साहित्य में आगमन एक युगांतकारी घटना है । उनसे पहले हिंदी कथा साहित्य में जासूसी, तिलिस्मी और एयारी से भरपूर कहानियां और उपन्यास लिखे गए थे। यथार्थवादी चित्रण को साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति बनाने का श्रेय प्रेमचंद को ही है। प्रेमचंद सही मायनों में गांव, गरीब और किसान को नायक बनाने वाले पहले कलाकार थे। प्रेमचंद के आरंभिक कथा साहित्य में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की झलक है लेकिन परवर्ती साहित्य में उन्हें यथार्थवाद या आलोचनात्मक यथार्थवाद के पुरस्कर्ता के रूप में देखा जा सकता है। ''गोदान'' और ''कफन'' जैसी रचनाएं इसका ज्वलंत उदाहरण है। प्रेमचंद वास्तविकता की फोटोग्राफिक प्रस्तुति को यथार्थवाद नहीं मानते थे, वे प्रकृतिवाद के भी खिलाफ थे। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन (लखनऊ 1936) में दिया गया उनका वक्तव्य उनकी यथार्थवाद विषयक मान्यताओं को बताने के लिए काफी है। कहानियों से ज्यादा उनके उपन्यास यथार्थ का समग्र और ईमानदार चित्रण प्रस्तुत करते हैं। ''सेवा सदन'' से शुरू होकर ''गोदान'' पर खत्म होने वाली उनकी औपन्यासिक यात्रा उनके निरंतर परिवर्तित होते दृष्टिकोण का परिचय देती है।

शब्दकोशः *आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, तिलस्मी–ऐयारी, नायकत्व, जातीय–जीवन, सामाजिक संक्रान्ति, प्रतिनिधि चरित्र, टाइप पात्र।*

प्रस्तावना

प्रेमचंद–युग में यथार्थवाद

हिंदी कथा–साहित्य में प्रेमचंद का उदय एक युग–प्रवर्तक एवं अविस्मरणीय घटना है। न सिर्फ यथार्थवाद बल्कि समूचा उपन्यास जगत् उनका ऋणी है तो इसलिए कि वे ऐसे पहले कलाकार हैं जो हिंदी कथा–साहित्य को मनोरंजन, तिलिस्म और रोमांस की दुनिया से बाहर लाकर जीवन की सामाजिक अर्थवत्ता से जोड़ते हैं। राजकुमारों, ऐय्यारों तथा समाज सुधारक महापुरुषों को नायकत्व से अपदस्थ करके गाँव के गरीब किसान को हिंदी कथा–साहित्य में नायकत्व से विभूषित करने वाले प्रेमचंद पहले कथाकार हैं, जिन्हें सच्चे अर्थों में यथार्थवाद का पुरस्कर्ता कहा जा सकता है। हालांकि भारतीय उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद से भी पहले उड़िया कथाकार फकीर मोहन सेनापति ने किसान जीवन के यथार्थ को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बना लिया था। सेनापति (1843–1918) का प्रसिद्ध उपन्यास 'छः माड़ आठ गुंठ' (छः बीघा जमीन, 1897) इस दृष्टि से कृषक–जीवन पर आधारित प्रथम यथार्थवादी उपन्यास है। उनके उपन्यासों और कहानियों में उड़ीसा का जातीय जीवन प्रतिबिम्बित होता है। उड़िया समालोचक मायाधर मानसिंह ने यह सवाल ठीक ही पूछा है कि ''फकीर मोहन से पहले किस भारतीय लेखक ने गाँव के फटेहाल और मूर्ख लोगों को अपनी रचनाओं का नायक बनाया है ? उनकी रचनाओं के सबसे जीवंत पात्र नाई, जुलाहे, खेतिहर मजदूर और अछूत हैं। उन्होंने साहित्य की दुनिया में आम आदमी और औरत को महत्त्व प्रदान किया।.....उनके पाठक समाज के हर वर्ग के लोगों को

* सह आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, टोंक, राजस्थान।

उनके उपन्यासों में पाते हैं। उनके कथा साहित्य में राजाओं से लेकर कूड़ा बीनने वाले और आदर्शवादी नायक–नायिकाओं से लेकर गुंडे और बदमाश तक मौजूद हैं। उनके मन में गाँव के प्रति किसी किसी प्रकार का रोमांटिक भ्रम नहीं था।'' भारतीय उपन्यास की इस यथार्थवादी परंपरा को हिन्दी में लाने का श्रेय प्रेमचंद को ही दिया जा सकता है। हिंदी उपन्यास में किसान के आने से उसी के अनुरूप कथ्य, भाषा और शिल्प भी आए जिससे उपन्यास को यथार्थवादी संस्कार प्राप्त हुआ। प्रेमचंद के उपन्यास प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि तथा गोदान कृषक–जीवन के यथार्थ पर ही लिखे गये हैं।

प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थवाद की पहचान करने से पहले हमें उनकी यथार्थवाद संबंधी धारणा को समझ लेना चाहिए। प्रेमचंद यथार्थ के लिए 'सच्चाई' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। उनके अनुसार यथार्थ की हू–ब–हू नकल करने में न तो कोई कला है और न ही यथार्थवाद। अर्थात् वे वास्तविकता के यथातथ्य फोटोग्राफिक चित्रण को यथार्थवाद नहीं मानते। यथार्थवाद की कमजोरी पर विचार करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि– ''यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ, नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का अच्छा–उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन–लीला समाप्त करते हैं।.....यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।'' इस कथन में प्रेमचंद यथार्थवाद को परिभाषित न कर उसकी सीमाओं की ओर संकेत करते हैं, जिससे ध्वनित होता है कि वे यथार्थ के प्रकृतिवादी चित्रण के कितने विरोधी थे। वे यथार्थवाद की आड़ में जीवन के कुत्सित और वीभत्स चित्रण के सर्वथा खिलाफ थे, ऐसा उनकी रचनाओं से साफ जाहिर भी होता है। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन (लखनऊ, 1936) के सभापति पद से दिए उनके भाषण से उनकी यथार्थवाद विषयक मान्यता थोड़ी स्पष्ट होती है– ''हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'' इस वक्तव्य के आधार पर प्रेमचंद यथार्थवाद के संदर्भ में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का अर्थ ग्रहण करते प्रतीत होते हैं, जो कि उनके गोदान–पूर्व के रचना कर्म से भी प्रकट होता है। प्रेमचंद के विचारों के आधार पर उनका यथार्थवाद स्पष्ट नहीं होता, उसकी असली परीक्षा उनकी रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकती है। यथार्थवाद भी रचना के मूल्यांकन पर ही ज्यादा जोर देता है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद

'सेवासदन' (1918) से लेकर 'गोदान' (1936) तक की औपन्यासिक यात्रा में प्रेमचंद का यथार्थवाद निरंतर परिपक्व और परिष्कृत होता गया है। अमृतराय के अनुसार ''सन् 1901 के आसपास प्रेमचंद ने अपना पहला उपन्यास 'श्यामा' लिखा। मुझे बताया गया है (किताब अब उपलब्ध नहीं है) कि उसमें प्रेमचंद ने बड़े सतेज, साहसपूर्ण स्वर में ब्रिटिश कुशासन की निंदा की है।'' इस प्रकार प्रेमचंद अपने प्रथम उपन्यास से ही साम्राज्यवाद और सत्ता विरोधी आलोचनात्मक रुख का परिचय देने लगते हैं। हालांकि 'श्यामा' संबंधी तथ्य ज्यादा प्रामाणिक नहीं है।

- **सेवासदन–** 'सेवासदन' (1918) उनका पहला महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें नायिका सुमन मध्यवर्ग की सामाजिक–आर्थिक कठिनाइयों के चलते अपनी से दुगुनी उम्र के दुहाजू गजाधर के साथ ब्याह दी जाती है। अनमेल विवाह और पति की शंकालु प्रवृत्ति से विद्रोह करके सुमन अपनी 'स्वतंत्रता और सम्मान' के लिए वेश्यावृत्ति का रास्ता अख्तियार कर लेती है। वेश्या जीवन के बहाने यह उपन्यास स्त्री की सामाजिक–आर्थिक पराधीनता की समस्या को उठाता है। 'सेवासदन' की कहानी में एक तीखा व्यंग्य है, उन सामाजिक स्थितियों पर जो कृष्णचंद्र जैसे भले इन्सानों को इस पूँजीवादी समाज में पथभ्रष्ट होने को मजबूर करती है। यहाँ दहेज के लोभी और झूठे दिखावे में फँसे मध्यवर्गीय शिक्षित युवा वर्ग की भी आलोचना है जो आधुनिक होने का दम भरता हुआ भी मध्यकालीन संस्कारों में जकड़ा

है। 'सेवासदन' अपने युग की प्रमुख सामाजिक समस्या को उठाता है; जबकि दहेज, अनमेल विवाह, पूंजीपतियों की भोग–वृत्ति तथा पुरुष–वर्चस्व जैसी अन्य समस्याऐं मुख्य समस्या को घनीभूत करती है। डॉ0 रामविलास शर्मा के शब्दों में ''प्रेमचंद ने विस्तार से दिखाया है कि इस समाज व्यवस्था में संपत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। प्रेमचंद ने सामाजिक संबंधों की छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होंने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरे में खड़ा कर दिया है.....''

प्रतिनिधि चरित्र की दृष्टि से सुमन वेश्या–जीवन का वर्ग–चरित्र न होकर व्यक्ति–पात्र ज्यादा है। उसका पति–परमेश्वर वाली मनोवृत्ति को तिलांजलि देकर अपने लिए एक 'निर्णय लेना' सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ी नारी की परिवर्तनशील परिस्थितियों को दर्शाता है। कृष्णचंद्र रूढ़िवादी समाज और पूँजी के कारण पथभ्रष्ट होने वाला पात्र है। वकील पद्मसिंह के चरित्र में राजनेताओं के अंतर्विरोध देखने लायक हैं। महंत रामदास पूँजीवाद का तथा चेतू अहीर शोषित किसान का वर्ग चरित्र बनकर उभरते हैं। इस प्रकार उपन्यास में व्यक्ति और वर्ग दोनों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मौजूद हैं। यह उपन्यास सुमन के माध्यम से स्त्री–चेतना में आते परिवर्तन और सामाजिक संक्रांति का चित्रण करता है। वेश्या जीवन को केंद्र में रखकर भी लेखक अश्लील भाषा और चित्रण से परहेज रख पाने में सफल है।

इन सबके बावजूद उपन्यास में यथार्थवाद की दृष्टि से कुछ असंगतियाँ भी है। भोली से प्रभावित होकर स्वतंत्रता और सम्मान के लिए सुमन का वेश्या बन जाना सजीव उदाहरण नहीं है। अंत में सुमन की आत्महत्या की कोशिश समझ में आने वाली है परंतु गजाधर का ह्रदय–परिवर्तन और उसके द्वारा 'सेवासदन' की स्थापना वेश्या जैसी बड़ी समस्या के काल्पनिक एवं आदर्शवादी समाधान ही प्रतीत होते हैं। सुमन को गंगाजी की धारा में बहाकर प्रेमचंद उसे वेश्या बनने को मजबूर करने वाले समाज पर ज्यादा अच्छी चोट कर सकते थे।

- **प्रेमाश्रम** – प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1922) गाँधीजी के असहयोग आंदोलन की ऐतिहासिक परिस्थिति में लिखा गया था। किसान जीवन पर आधारित होने के कारण यथार्थवादी साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद–साहित्य के सोवियत अध्येता व0 वालिन के शब्दों में ''प्रेमाश्रम' पहली ऐसी प्रमुख रचना है, जो हिंदी–उर्दू साहित्य में इतने साहस से एक नये नायक–किसान नायक को लायी। लेखक ने किसानों के हर दिन के जीवन को दिखाने की ओर विशेष ध्यान दिया है। पहले अधिकतर ऊँची सामाजिक स्थिति वाले लोगों को ही नायकों के योग्य माना जाता था।'' उपन्यास के क्षेत्र में यह यथार्थवादी नायक की प्रतिष्ठा थी। 'प्रेमाश्रम' में जमींदार ज्ञानशंकर के खिलाफ लखनपुर के किसानों मनोहर, बलराज और बिलासी का प्रतिरोध दिखाया गया है। यह प्रतिरोध अंग्रेजी–साम्राज्यवाद के साथ भारतीय सामंतवाद के अनैतिक गठजोड़ की भी असलियत बयान करता है। इस उपन्यास में सामंतवाद की प्रतीक पतनोन्मुख जमींदारी प्रथा की अनिष्टकारी समस्या की जड़ों में जाकर समग्रता के साथ उसका विश्लेषण किया गया है। उपन्यास में प्रेमचंद जिस ढंग से गाँवों का वर्ग–संघर्ष चित्रित करते हैं और सत्याग्रह की असफलता दिखाते हैं, उसमें उस दौर की सबसे बड़ी विचारधारा अर्थात् गाँधीवाद की आलोचना भी निहित है।

प्रेमाश्रम राजनीति और समाज की प्रतिनिधि परिस्थितियों का चित्रण करता है। इस 'संक्रांति' को स्पष्ट करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''प्रेमचंद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात में है कि वह समाज में देख सकते हैं कि कौन–सी चीज मर रही है और कौन–सी चीज उग रही है.....यहाँ कुछ शक्तियाँ पतनशील है तो कुछ शक्तियाँ उदयशील भी।'' निश्चित रूप से उपन्यास में ज्ञानशंकर और ज्वालासिंह जैसे जमींदार मरणशील शक्ति हैं अैर लखनपुर के किसान उदीयमान शक्ति हैं। प्रतिनिधि चरित्रों के लिहाज से ज्ञानशंकर सामंतवाद और पूँजीपति वर्ग का वर्ग–चरित्र है, जबकि मनोहर, बलराज और बिलासी में परिवर्तित होते किसान वर्ग की छवि है। बलराज के चरित्र में व्यक्ति और वर्ग दोनों की विशेषताएँ नजर आती है अतः वह 'टाइप' के नजदीक है।

'प्रेमाश्रम' का अंत आलोचनात्मक यथार्थवाद के विपरीत जाता हुआ है। ज्ञानशंकर, सुक्खु चौधरी, इजाद हुसैन और बिसेसर साह जैसे नेगेटिव पात्रों का हृदय परिवर्तन स्वाभाविक और यथार्थवादी नहीं है। पूरे कथानक में प्रभावहीन भूमिका निभाने वाले प्रेमशंकर द्वारा 'प्रेमाश्रम' की स्थापना समस्या का आदर्शवादी समाधान प्रतीत होता है। प्रतिगामी शक्तियाँ रचना के अंत तक यथावत बनी रहती है, जिनके रहते लखनपुर की जनता सुखी नहीं हो सकती।

- **रंगभूमि–** 'रंगभूमि' (1925) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक प्रातिनिधिक परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास है। केंद्रीय कथा में पांडेपुर गाँव के अंधे भिखारी सूरदास का अंग्रेजी साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया है जबकि दूसरी कथा में उदयपुर रियासत के सामंती यथार्थ का चित्रण है। पूँजीपति जान सेवक के हथकंडों से अपनी जमीन बचाने के लिए सूरदास सत्याग्रह करता हुआ शहीद हो जाता है। यह साम्राज्यवाद और पूंजीवाद से संघर्ष करते नायक की यथार्थवादी त्रासदी या असफलता है। दूसरी कहानी सामंतवर्ग की कायरता, लोभ और अंतर्विरोधों को उद्‌घाटित करती है। देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में आते परिवर्तन, अहिंसा और सत्याग्रह के विरुद्ध सिर उठाता उग्रवाद, व्यवस्था के खिलाफ जनता का प्रतिरोध, स्त्री का राजनीति में प्रवेश, गाँवों में औद्योगीकरण और पूंजीवाद का प्रवेश, परिवार और गाँव जैसी इकाइयों का ह्रास तथा इन सबके फलस्वरूप होने वाला परिवर्तन और संक्रमण रचना में प्रातिनिधिक परिस्थितियों की सृष्टि करता है।

'रंगभूमि' के ज्यादातर पात्र अपने–अपने वर्ग के प्रतिनिधि जान पड़ते हैं। क्लार्क यदि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि है तो जॉन सेवक पूंजीवाद की चरित्रहीनता का प्रतीक है। महेंद्रप्रताप, भरतसिंह और रानी जाह्नवी सामंतवाद के वर्ग–चरित्र बनकर उभरते हैं। इन सबके बीच अंधे, अनपढ़, दलित और भिखारी सूरदास को एक 'टाइप' पात्र के रूप में लाना रंगभूमि का सबसे बड़ा यथार्थवादी पहलू है। सूरदास में परंपरागत किसान की छवि के साथ–साथ भावुकता, प्रतिरोध, अपराजेय उत्कट आशावाद तथा भविष्य के प्रति रचनात्मक कल्पना जैसे वैयक्तिक गुण भी मौजूद हैं। ये सब मिलकर उसे होरी के बाद प्रेमचंद का दूसरा महत्वपूर्ण 'टाइप' पात्र बनाते हैं। उपन्यास के अंत में सूरदास को पराजित दिखाना 'यथार्थवाद की विजय' का उदाहरण है, इस संबंध में शिवकुमार मिश्र का संकेत महत्वपूर्ण है– ''फिर भी चूंकि प्रेमचंद पूरी ईमानदारी के साथ वस्तुस्थिति से अपना संबंध रखते थे, इसलिए उन्होंने सूरदास को पराजित दिखाया। यह यथार्थवाद की विजय थी। एंगेल्स ने इसी को बालजाक के संदर्भ में 'ट्रायम्फ़ ऑफ रियलिज्म' कहा था।'' पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह 'रंगभूमि' के अंत में कोई काल्पनिक या आदर्शवादी समाधान नहीं है, इन सब कारणों से यह तुलनात्मक रूप से बेहतर यथार्थवादी उपन्यास है।

- **कायाकल्प**– 1926 में प्रकाशित कायाकल्प यथार्थवाद की दृष्टि से एक कमजोर रचना ही मानी जाएगी। इसमें जहाँ एक ओर रानी देवप्रिया की पूर्वजन्म की कल्पना से युक्त कहानी है तो दूसरी ओर जगदीशपुर रियासत का सामंती यथार्थ। रानी देवप्रिया का चरित्र सामंतवाद का वर्ग–चरित्र है, वह अपने हर नये प्रेमी को पूर्व–जन्म का पति स्वीकार कर लेती है, रचना के अंत में वह भोग–विलास छोड़कर अपना जो कायाकल्प करती है, वह विश्वसनीय नहीं लगता। चक्रधर के चरित्र में राजनेताओं और समाजसेवकों के अंतर्विरोध स्वाभाविक लगते है। किन्तु अंत में उसका भी गृह त्याग कर महात्मा का वेश धारण कर लेना हदय परिर्वतन का ही उदाहरण है, जिसके कारण उपन्यास का समापन कृत्रिम, अव्यवहारिक और यांत्रिक प्रतीत होता है। उपन्यास में किसी भी पात्र को टाईप या प्रतिनिधि चरित्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। प्रेमचंद की यथार्थवादी यात्रा में यह उपन्यास एक कमजोर कड़ी ही सिद्ध होता है।
- **निर्मला** – 'सेवासदन' के बाद स्त्री–जीवन की समस्या पर लिखा गया प्रेमचंद का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है– 'निर्मला' जिसका प्रकाशन 1927 में हुआ। निर्मला की करुण कहानी को हमारे मध्यवर्गीय समाज में कहीं भी, कभी भी घटते हुऐ देखा जा सकता है, यह उसका एक यथार्थवादी पहलू है। पिता

की आकस्मिक मृत्यु के बाद भारी दहेज न जुटा पाने के कारण निर्मला का तीन बेटों के बाप अधेड़–विधुर तोताराम से विवाह भी एक त्रासदी है और अंत में अपने ही किशोर–पुत्र को लेकर तोताराम की संदेह–वृत्ति के कारण मानसिक संताप में घुलती निर्मला की मृत्यु भी एक त्रासदी है। प्रेमचंद का यह पहला दुखांत उपन्यास है, जो कोई आदर्श या समाधान प्रस्तुत नहीं करता। दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के मूल में भी यहाँ स्त्री की सामाजिक–आर्थिक पराधीनता की समस्या को ही उभारा गया है।

निर्मला मध्यवर्गीय स्त्री की विवशता को चित्रित करने वाला पात्र है जिसका अन्तर्बाह्य विश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक होने के कारण समझ में आने वाला है। अन्य स्त्री पात्र कल्याणी, रंगीलीबाई और सुधा आदि स्त्री की सोच में आते आधुनिक परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करते हैं। अंत में मुंशी तोताराम का पश्चाताप हृदय परिवर्तन का उदाहरण है लेकिन वह परिस्थिति सापेक्ष होने के कारण यथार्थवाद की सीमा में स्वीकार्य है। 'निर्मला' एक यथार्थवादी उपन्यास है जिसे स्वीकार करते हुए डॉ0 त्रिभुवनसिंह ने थोड़ा अतिशयोक्ति का परिचय भी दिया है। उनका मानना है कि ''समाज को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करने वाला 'निर्मला' जैसा उपन्यास हिंदी साहित्य में दूसरा लिखा ही नहीं गया।''

- **गबन–** मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन और अंतर्विरोधों को उजागर करने के कारण 'गबन' (1931) का कथानक यथार्थवादी प्रतीत होता है। 'आभूषण–मंडित संसार' से आई अपनी पत्नी जालपा की चंद्रहार की ख्वाहिश पूरी करने के लिए उपन्यास का नायक रमानाथ सरकारी राशि का गबन करने के बाद इधर उधर भागता फिरता है। रमानाथ–जालपा की कहानी में मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता, झूठा दिखावा, नैतिक पतन तथा दांपत्य का विघटन जैसे यथार्थ संदर्भ हैं तो दूसरी ओर देवीदीन खटिक की कथा में स्वाधीनता आंदोलन के चित्रण के साथ राजनेताओं, पूंजीपतियों और पुलिस व्यवस्था की आलोचना को शब्द दिये गये हैं।

उपन्यास 'गबन' के पात्र अपने–अपने वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र है। नायक रमानाथ आर्थिक विषमता से पीड़ित मध्यवर्गीय नवयुवकों का प्रतिनिधि है जिसके रूप में लेखक ने अच्छाई–बुराई तथा संकल्पों–विकल्पों का यथार्थवादी पुंज प्रस्तुत किया है। रामदरश मिश्र के अनुसार ''वास्तव में मध्यवर्ग का सारा संघर्ष यहीं केन्द्रीभूत है। रमानाथ जीवन भर उच्च आकांक्षा और आर्थिक तथा व्यक्तित्वगत हीनताओं के संघर्ष से पीड़ित रहता है। उसके इस संघर्ष को तीव्र रूप में दिखाने के लिए लेखक को अपनी ओर से प्रयास नहीं करना पड़ता। पात्र स्वयं एक बार उसमें उलझकर अपने अशक्त, आडंबरप्रिय संस्कारों के कारण अनेक विषम परिस्थितियों में उलझता जाता है, छूटने के बजाय और फँसता जाता है.....'' और इसी क्रम में रमानाथ के मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व से उपन्यास में यथार्थवाद की सृष्टि होती है। जालपा में मध्यवर्गीय स्त्री की आधुनिक छवि निहित है। देवीदीन सफेदपोश बुर्जुआ नेताओं के अंतर्विरोधों को पहचानने वाली जनता का प्रतीक है जो मोहभंग का शिकार है। इस प्रकार कथानक, पात्रों और समस्याओं की दृष्टि से गबन एक यथार्थवादी रचना मानी जा सकती है।

- **कर्मभूमि–** 1932 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' प्रेमचंद का एक बहुआयामी उपन्यास है। स्वाधीनता आंदोलन के युगीन संदर्भों, गाँधी–इरविन समझौता, अंबेडकर का मंदिर–प्रवेश आंदोलन, सविनय अवज्ञा जैसी प्रतिनिधि परिस्थितियों को यह उपन्यास कथानक के भीतर परोक्ष रूप से चित्रित करता है। बलात्कार पीड़िता मुन्नी का संघर्ष, अछूतों का मंदिर प्रवेश और सुखदा का भूमि–आंदोलन जैसी घटनाएं जनता के संघर्ष और प्रतिरोध को व्यंजित करती है, जनता की जीत यहाँ चिर–संघर्ष से प्राप्त होने के कारण आदर्शवादी नहीं लगती। उपन्यास का अंत किसी हृदय परिवर्तन और कृत्रिम समाधान को प्रस्तुत नहीं करने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

'कर्मभूमि' के स्त्री पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में अधिक संघर्षशील, परिपक्व और प्रतिरोध की चेतना से युक्त है। मुन्नी गोरे सैनिकों से बलात्कार की शिकार होने के बाद प्रतिरोध से भी आगे प्रतिशोध तक जाती है। रेणुका और सुखदा जैसे पात्र नारी की बदलती संघर्षशील छवि को प्रस्तुत करते हैं। अमर–सलीम की दोस्ती

तथा अमर–सकीना का प्रेम सांप्रदायिक सद्भावना का प्रतीक बन कर उभरता है। नायक अमरकांत के रूप में प्रेमचंद ने राजनीति का अंतर्विरोधी चरित्र पेश किया है जिसमें देशभक्ति और समाजसेवा जैसे आदर्शों के बावजूद अवसरवाद, कायरता, चालाकी और समझौतापरस्ती जैसी कमजोरियाँ भी हैं। महंतजी का चरित्र सामंतवाद एवं पूँजीवाद के अनैतिक गठजोड़ का प्रतीक है। मैनेजर पांडेय के शब्दों में यह उपन्यास ''गरीब किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और दलितों के व्यापक जागरण, आंदोलन; उसके दमन और प्रतिरोध की जटिल समग्रता का आख्यान है।'' जन संपृक्ति उपन्यास के यथार्थवाद की प्रमुख विशेषता है।

- **गोदान–** अंतिम उपन्यास 'गोदान' (1936) न केवल प्रेमचंद का बल्कि समग्र हिंदी–साहित्य में यथार्थवाद का उच्चतम प्रतिमान है। कुछेक अंतर्विरोधों–असंगतियों के बावजूद यह आलोचनात्मक यथार्थवाद को उसकी आत्यंतिक सीमाओं तक अभिव्यक्त करता है। 'गोदान' में दो कथाएं समानांतर स्तर पर चलती है। शहर की कहानी ग्रामीण यथार्थ को अधिक घनीभूत करने के उद्देश्य से लायी गयी अनुभव होती है। जैसे बालजाक ने 'द पीजेण्ट्स', में फकीर मोहन सेनापति ने 'छः माड़ आठ गुंठ' में, वैसे ही प्रेमचंद ने गोदान में किसान–जीवन का समग्र यथार्थ उसके गुण–दोषों के साथ चित्रित किया है। गोदान की कथा से कौन परिचित नहीं है कि किस तरह बेलारी गाँव का गरीब किसान होरी जीवन में एक बार नहीं, बल्कि कई मौतें मरता है। उसकी गाय रखने की छोटी सी 'साध' फिर भी अधूरी ही रहती है। समस्या–विश्लेषण की दृष्टि से किसान की गरीबी और कर्ज उपन्यास की मूल समस्या है, जिसके मूल में आर्थिक विषमता ही मुख्य कारण है। प्रेमचंद 'गोदान' में दिखाते हैं कि गरीब को घेरने वाली प्रतिगामी शक्तियाँ कितनी एकजुट है और किसान किस कदर निपट अकेला है। प्रेमचंद यहाँ जमींदारों–महाजनों के प्रति ही निर्मम नहीं है, अपने प्रिय पात्र किसान की धर्मभीरू कायरता, सहिष्णुता और समझौतापरस्ती के प्रति भी आलोचनात्मक रवैया अपनाते हैं। अपने प्रिय नायक होरी के प्रति यह निर्ममता प्रेमचंद जैसा यथार्थवादी ही दिखा सकता था।

मुख्य समस्याके इर्द–गिर्द यह उपन्यास सामंतवाद, पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, स्त्री व दलित–मानवता का शोषण जैसी अन्य समस्याओं की भी गहरी पड़ताल कार्य–कारण संबंधों की रोशनी में करता है। राय साहब अमरपाल सिंह पतनोन्मुख जमींदारी, प्रथा अर्थात् सामंतवाद के मि0 खन्ना पूंजीपति वर्ग के तथा झिंगुरी सिंह, पडित दातादीन और पटेश्वरी ग्रामीण महाजनी सभ्यता के प्रतिनिधि वर्गीय पात्र है, जिनका चरित्र–चित्रण ही उनकी यथार्थवादी आलोचना है। इन सबके बीच होरी, धनिया और गोबर के चरित्र में प्रेमचंद ने वर्ग और व्यक्ति दोनों की विशेषताएँ उनके समस्त गुण–दोषों के साथ रखकर अपूर्व यथार्थवादी 'टाइप' चरित्रों का सृजन किया है। होरी जहाँ आम भारतीय किसान का 'प्ररूप' है, वहीं उसमें कुछ व्यक्तिगत निजी विशेषताएं भी है। उसका अंतर्बाह्य विश्लेषण और मानवीय अंतर्विरोध हर दृष्टि से यथार्थ एवं स्वाभाविक लगते हैं। विजेंद्र नारायण सिंह के शब्दों में '' 'गोदान' में होरी की पीडा निजी पीड़ा भर नहीं रह जाती, वह उपनिवेशवाद के तहत शोषित पूरे भारतीय किसान की पीड़ा है।'' यही होरी वर्ग–चरित्र से अलग जाकर जब गौहत्या के अपराधी भाई हीरा के खेतों की रखवाली करता है और गर्भवती झुनिया को स्वीकार करता है तो उसकी निजी विशेषताएँ भी प्रकट होती है। गोपाल राय के अनुसार ''धनिया एक प्रारूपिक किसान–पत्नी है, गरीबी की मार से बुरी तरह पिटी हुई, जीवन की साधारण सुविधाओं से भी वंचित.....अभावों के बीच जीने वाली असमय वृद्ध भारतीय कृषक नारी।'' लेकिन यही धनिया जब मर्दों से आगे बढ़कर अन्याय का प्रतिरोध करती है, गर्भवती विधवा झुनिया को बहू स्वीकारती है और पोता होने पर गला फाड़कर सोहर गाती है तथा सिलिया चमारिन का साथ देती है तो उसमें आधुनिक, क्रांतिकारी व्यक्तिगत छवि के दर्शन भी होते हैं। गोबर के रूप में प्रेमचंद ने तर्कशील, विद्रोही, किसान से मजदूर बनती, गाँव से शहर को विस्थापित होती नई युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र गढ़ा है।

प्रतिनिधि चरित्रों को 'गोदान' का रचनाकार भारतीय इतिहास की ऐतिहासिक, परिवर्तनशील, संक्रांतियुक्त परिस्थितियों के बीच खड़ा करता है। गोदान में एक ओर सामंतवाद, उपनिवेशवाद और महाजनी सभ्यता की मरणासन्न अवस्था का चित्रण है तो गोबर के रूप में आने वाले युग की प्रसव–कथा का संकेत भी निहित है। तिल–तिल कर होरी का मरना और गोबर का शहर जाना दो पीढ़ियों के मूल्यों के टकराव की

कहानी है। मातादीन और सिलिया के प्रेम–प्रसंग में ब्राह्मण–दलित संघर्ष तथा गोबर–झुनिया की 'लिविंग टुगेदर' संस्कृति ऐसे नये संदर्भ हैं जो 'गोदान' में सामाजिक परिवर्तन और पाश्चात्य संक्रमण की ओर इंगित करते हैं।

'टाइप' पात्रों और परिस्थितियों के बाद उपन्यास का ट्रेजिक अंत गोदान के यथार्थवाद की एक बड़ी उपलब्धि है। वैसे तो 'गोदान' के हरेक पृष्ठ पर उसके नायक होरी की मौत लिखी है लेकिन अंतिम अध्याय में कंकड़ खोदते हुए लू लगने से होरी जब मरता है और धनिया उसके ठंडे हाथ में बीस आने पैसे रखकर उससे 'गोदान' करवाती है तो जैसे सुधार के स्वप्न और आदर्शों की कल्पनाएं चूर–चूर हो जाती हैं। पी.सी. जोशी के शब्दों में ''मृत्यु के समीप होरी का कथन एक यथार्थ के चित्रण की पराकाष्ठा है जिसके आघात से ग्राम के पुनरुद्धार की कल्पना के महल पूरी तरह ढह जाते हैं।'' 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' की तरह 'गोदान' का अंत किसी पात्र का यांत्रिक हृदय–परिवर्तन अथवा किसी समस्या का काल्पनिक समाधान प्रस्तुत नहीं करता। इस तरह प्रेमचंद के उपन्यासों में गोदान की संरचना और उसका यथार्थवादी अंत आलोचनात्मक यथार्थवाद की दृष्टि से सबसे सशक्त माना जा सकता है।

निष्कर्ष

उक्त आलेख में प्रेमचंद के कथा साहित्य विशेषकर उपन्यासों पर दृष्टि डालने के बाद उन्हें हिंदी में यथार्थवाद का युग प्रवर्तक रचनाकार मानना श्रेयस्कर होगा। प्रेमचंद के उपन्यासों का क्रमशः अध्ययन करने के बाद यह लगता है कि निरंतर बदलते उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण और लेखकीय विचारधारा का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। उत्तर भारत की ग्रामीण और नगरीय सभ्यता का यथार्थ, गरीब और किसान वर्ग को नायकत्व प्रदान करना, जनता की तीव्र समस्याओं से गहरा जुड़ाव, साम्राज्यवाद की आलोचना, बदलते सामाजिक यथार्थ की संक्रांति का चित्रण आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें टॉल्सटाय की तरह एक महान यथार्थवादी कलाकार का दर्जा देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मायाधर मानसिंह : फकीर मोहन सेनापति पृ0 69 व 58 (स्रोत– मैनेजर पांडेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ0 287)
2. प्रेमचंद : कुछ विचार, पृ0 50 (स्रोत– डॉ0 सत्यकाम : आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, पृ0 58)
3. प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य, (स्रोत – सं. कुंअरपाल सिंह : साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद, पृ0 167)
4. अमृतराय : युग प्रतिनिधि कलाकार प्रेमचंद (लेख),सं0 डॉ0 सत्येंद्र : प्रेमचंद, पृ0 10
5. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, पृ0 36–37
6. डॉ0 वालिन की टिप्पणी, डॉ0 मदनलाल 'मधु' : गोर्की और प्रेमचंद, पृ0 234
7. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचंद और उनका युग, पृ0 54–55
8. शिवकुमार मिश्र का व्याख्यान, रमेश उपाध्याय : जनवादी कहानी, पृ0 232
9. डॉ0 त्रिभुवन सिंह : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद (निबंध), सं. सत्येंद्र : प्रेमचंद, पृ0 103
10. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ0 50
11. मैनेजर पांडेय : अनभै सांचा, पृ0 153
12. डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह : हिंदी उपन्यास : यथार्थवाद बनाम आधुनिकतावाद, पहल (अंक 76), पृ0 190
13. डॉ0 गोपाल राय : गोदान : नया परिप्रेक्ष्य, पृ0 131
14. पी.सी. जोशी : प्रेमचंद की अमरता के मूल स्रोत (लेख), स्रोत सं. गरिमा श्रीवास्तव : उपन्यास का समाजशास्त्र, पृ0 148

❖◆❖